भारतीय शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से उत्तर मध्यकाल

डॉ. जया मिश्रा
नेहरूग्राम भारती(मानित विश्वविद्यालय)
प्रयागराज उत्तर प्रदेश

मुगलों के आगमन के पश्चात का सयम उत्तर मध्यकाल कहलाता है। मुगलकाल के अधिकांश शासक कला–प्रिय थे। उन्होंने अन्य कलाओं के साथ–साथ संगीत कला को भी आश्रय दिया एवं उसके विकास में अपना योगदान प्रदान किया।

मुगलकाल में सर्वप्रथम बाबर मुगल बादशाह हुए। बाबर ने इब्राहीम लोदी को परास्त कर मुगल सम्प्रदाय की नींव रखी। बाबर संगीत–प्रेमी तथा संगीत मर्मज्ञ था। उसके दरबार में अनेक गायक–वादक रहते थें बाबर संगीत की महान शक्ति को स्वीकार करता था। बाबर के काल में कल्लिनाथ प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए, जिन्होंने सारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' की विस्तृत टीका लिखी। बाबर का पुत्र हुमायूँ भी संगीत प्रेमी था। इसके दरबार में अनेक गायक–वादक थे। हुमायूँ को भी संगीत का आध्यात्मिक रूप पसंद था। अपने संकट के क्षणों में भी सह संगीत के द्वारा नवीन उत्साह प्राप्त करता था। हुमायूँ संगीतज्ञों का आदर करता था तथा सूफी सन्तों का गान उसे विशेष प्रिय था। एक युद्ध के दौरान बैजू हुमायूँ के आश्रय में पहुंच गए थे। बैजू के गायन से प्रभावित होकर हुमायूँ ने युद्ध रुकवा दिया था। बाद में बैजू फिर बहादुर शाह की सेवा में चले गए थे।

हुमायूँ का पुत्र अकबर भी बहुत संगीतानुरागी था। उसके विषय में लिखे ध्रुवपदों से पता चलता है कि अकबर 'संगीत रत्नाकर' जैसे ग्रंथों पर गुणियों के साथ चर्चा करता था तथा उसको समझने का प्रयास करता था। अकबर स्वयं बड़ा अच्छा नक्कारा बजाता था।[1] अबुल फजल के अनुसार अकबर के दरबार में हिन्दू, ईरानी, तूरानी, कश्मीरी बहुत से स्त्री–पुरुष संगीतज्ञ थे। इनके दरबारी मसीत खां ने सितार पर मसीतखानी गत का प्रचलन किया। अकबर के समय में ध्रुवपद पद्धति का विशेष प्रचार हुआ।

अकबर विद्वानों एवं संगीतकारों के संसर्ग में रहता था। इसके काल में राग सम्बन्धी अनेक प्रयोग हुए। रामदास द्वारा रामदासी मल्हार एवं तानसेन द्वारा अनेक रागों की रचना हुई। अकबर समय–समय पर संगीतज्ञों को पुरस्कृत करता रहता था। अकबर को उच्चकोटि का धार्मिक संगीत विशेष प्रिय था। संगीत उसके लिए सिर्फ विलास का एकमात्र उपकरण नहीं था, बल्कि वह इसको रूहानी विकास के लिए एक शक्तिशाली सम्बल समझता था।[2] इस समय जहां उत्तर भारतीय संगीत में विदेशी संगीत का मिश्रण हो गया था वहीं दक्षिण में भारतीय संगीत अपने प्राचीन रूप में विद्यमान था।

अकबर कालीन महान् संगीतकार तानसेन का जन्म 1500ई0 के आस–पास हुआ। तानसेन इतने विख्यात संगीतज्ञ हुए कि तानसेन का नाम संगीत का पर्याय बन गया। ये महान् संगीता हरिदास जी के

शिष्य थे। राजा रामचन्द्र तानसेन के आश्रयदाता थे। बाद में अकबर बादशाह इनके संगीत से प्रभावित होकर इनको अपने दरबार में ले गया था जहाँ उसने अकबर बादशाह ने इन्हें सर्वोच्च पद तथा *'कण्ठाभरणवाण विलास'* की उपाधि दी।

तानसेन ने अनेक ध्रुवपदों की रचना की। उसके ध्रुवपदों में प्रायः अकबर की प्रशंसा का वर्णन मिलता है। इन्होंने मियाँ की मल्हार, दरबारी कान्हड़ा, मियाँ की तोड़ी, मियाँ की सारंग आदि अनेक रागों का निर्माण किया। इन्होंने वीणा के आधार पर रबाब का आविष्कार किया। इसकी तीन रचनाओं का उल्लेख मिलता है–रागमाला, संगीतकार, श्री गणेश स्त्रोत। इन्होंने अपनी रचनाओं में अनवद्ध (वाद्य) के स्थान पर वितत् शब्द का प्रयोग किया है।[3] तानसेन के विषय में अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हैं, जैसे–संगीत द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित करना, मृगों को बुलाना, वर्षा कराना आदि। यद्यपि इन घटनाओं का कोई ठोस प्रमाण नहीं है तथापि अनेक जगह इन घटनाओं का वर्णन मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि तानसेन ने भारतीय संगीत की अपूर्व शक्ति को आत्मसात कर दिया था। तानसेन के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है–

तानसेन संगीत कला के केवल कलाकार ही नहीं वरन् आचार्य भी थे। उनकी रचनाओं से उनके शास्त्रीय ज्ञान एवं पाण्डित्य का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। उनकी मृत्यु 1589 में हुई। अकबर के काल में संगीत सम्बन्धी प्रमुख गन्थों की रचना हुई।

स्वर–मेल–कलानिधि :

दक्षिण भारत पर चूंकि विदेशी आक्रमण का प्रभाव नहीं पड़ा था इसलिए वहां पर पारम्परिक संगीत पर आधारित काव्य ग्रन्थ लिखे गये। 1550ई0 में रामामात्य ने कर्नाटकी संगीत का 'स्वर–मेल कलानिधि' नामक श्रेष्ठ ग्रन्थ लिखा। दक्षिणात्य पद्धति से सम्बन्धित होते हुए भी ऐतिहासिक दृष्टि से इस ग्रन्थ का अध्ययन महत्वपूर्ण माना जाता है। इसमें इन्होंने 22 श्रुतियों, 7 शुद्ध स्वर, 7 विकृत स्वर, गंधर्व एवं गान संगीत, 20थाटों के अन्तर्गत 63 रागों आदि का वर्णन किया है।[4]

रागमाला, राग मंजरी, सद्रागचन्द्रोदय एवं नर्तक निर्णय :

कर्नाटक के विद्वान संगीतज्ञ कर्नाटक के विद्वान पुण्डीरीक विट्ठल (1599 ई0) ने उपरोक्त चारों ग्रन्थों का निर्माण किया। पुण्डरीक विट्ठल ने अपनी रचनाओं में 'स रे रे प पध् ध सां' को शुद्ध सप्तक माना। 22 श्रुतियों, 7 शुद्ध एवं 7 विकृति स्वरों, 19 थाटों, थाट–राग वर्गीकरण, राग–रागिनी वर्गीकरण, षड्ज ग्राम मूर्च्छना आदि का पूर्ण स्पष्ट वर्णन इन्होंने किया है।

'शुद्ध भैरविहोला देशिकारस्ततः परम्।
श्रीरागः शुद्ध नाटश्च नट्नारायणश्च षट्।।[5]

भक्त कवियों की रचनाओं में संगीत :

10 वीं शताब्दी से 16 वीं शताब्दी के आरम्भ तक अनेक आक्रमणकारियों के दमन के कारण यहां धर्म, संस्कृति तथा कला आदि की किसी भी दृष्टि से उन्नति एवं प्रगति नहीं हुयी। इस कारण तत्कालीन समाज में ऊंच–नीच, जात–पात आदि दुर्भावनायें आदि बलवती हो गयी थीं। इसके विरोध में सर्वप्रथम 14वीं शती में रामानन्द जी ने प्राचीन काल से चली आ रही भक्ति धारा को पुनः प्रवाहित किया, जिसका सम्पूर्ण भारतीय जनता ने स्वागत किया।

इस भक्ति धारा का समर्थन एवं प्रचार कबीर, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, नामदेव, रामानुजाचार्य, गुरूनानक, चैतन्य महाप्रभु आदि अनेक महान सन्तों ने किया। भक्ति धारा की एक परम्परा सगुणवादी के अन्तर्गत भक्त अपने देव के विभिन्न नाम–रूप एवं लीलाओं को अपनी आराधना का विषय बनाता था। दूसरी निर्गुण, निराकार, निर्विकार था। इन सन्तों ने अपनी मंगल वाणी अमृतधारा को संगीत के माध्यम से जन–जन तक पहुंचाया।

महान संत कबीरदास जी ने जीवन के रहस्यवाद को बड़ी सफलता से अपने सरल एवं संगीतमय पदों द्वारा सामान्य लोगों को समझाया। जो आज भी हमारे लिए अमूल्य हैं। कबीर के पदों में जीवन की यथार्थता के स्पष्ट दर्शन होते हैं। इनके पदों को अशिक्षित वर्ग भी बड़ी सरलता से समझ लेता है। कबीर ने अपने पदों में अनेक रागों का प्रयोग किया तथा अपनी विकृत भाषा में रागों के नाम भी दिये। जैसे –गउड़ी, आसा आदि। उन्होंने संगीत के माध्यम से सामाजिक सुधार किया।' वास्तव में कबीर ने संगीत की शिल्पज्ञता के क्षेत्र में कोई कार्य नहीं किया, लेकिन संगीत के भाव–पक्ष को उत्कृष्ट बनाने में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। डगमगाते हुए समाज को सुस्थिर करने में कबीर के पदों ने बड़ा कार्य किया।[6]

अकबर के काल में सूरदास जी के पद सर्व–साधारण में बहुत प्रचलित थे। इनके पदों में भारतीय संगीत की पवित्रता पूर्णतया विद्यमान है। सूरदास जी ने अपनी रचनाओं 'सूर सागर' तथा 'भ्रमर–गीत' द्वारा संगीत की सेवा की। ये रचनाये अपने माधुर्य के कारण आज तक प्रचलित हैं। सूर के संगीतमय पदों में संगीत की ध्रुपद, भजन कीर्तन आदि विभिन्न शैलियां दृष्टिगोचर होती हैं। इसके अतिरिक्त नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, ताल, अलाप, तान, राग, नृत्य, वाद्य आदि सभी का वर्णन मिलता है। इनके पदों में सारंग, नटनारायण, गौरी, मल्हार आदि रोगें का बार–बार उल्लेख मिलता है। बिलावल इनका सर्वप्रिय राग रहा। सूरदास ने सूरमल्हार, षटमंजरी, सूरसारंग आदि रागों की रचना की। इनकी रचना 'सूर सागर' में लगभग 87 राग–रागिनियां दृष्टिगोचर होती हैं। सूर द्वारा प्रयुक्त राग–रागिनियों की विविधता को देखकर आश्चर्य होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि वे संगीत–शास्त्र में प्रकाण्ड पंडित थे।[7]

गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस', 'दोहावली', 'गीतावली', एवं 'विनय पत्रिका' आदि अमूल्य ग्रन्थों की रचना की। विनय–पत्रिका एवं गीतावली में गेय पद्य हैं। जो संगीत के क्षेत्र में अपना बहुमूल्य

स्थान रखते हैं। इन्होंने अपने काव्य की नींव संगीत पर रखी। तुलसीदास जी के अनुसार–''हरि पर प्रीति न होय, बिना हरि गुन गान सुने।'' अतः स्पष्ट है कि तुलसीदास जी की दृष्टि में संगीत के बिना अपने इष्ट देव की भक्ति करना व्यर्थ था। इनको राग एवं रस के सम्बन्ध का पूर्ण ज्ञान था। इसी कारण इन्होंने करुण भाव दर्शाने के लिए जैत श्री, नट, केदार, आसावरी आदि श्रृंगार–भाव के लिए बसन्त आदि, वीर रस के लिए धनाश्री आदि रागों का प्रयोग किया। अकबर के काल में इस महान् कवि ने जितना संगीत का प्रसार–प्रचार किया, उतना शायद तानसेन भी न कर पाये होंगे।[8]

इसी समय मीराबाई इसी समय मीराबाई ने भी संगीत संसार को अपने लालित्यपूर्ण, मधुर, बहुमूल्य पद दिये। जिनको आज भी सुनकर लोक भक्ति से झूम उठते हैं। मीराबाई संगीत के तीनों अंगों गायन(गीत) वादन (एकतारा) एवं नृत्य से युक्त होकर अपने इष्ट देव श्रीकृष्ण की साधना में लीन हो जाती थी। इन्होंने भी अपने पदों में अनेक राग–रागिनियों का प्रयोग किया। उनकी गायन शैली में शास्त्रीय संगत की राग–रागिनियों का प्रयोग किया। उनकी गायन शैली में शास्त्रीय संगीत की राग–रागिनियों तथा लोक गीतों की धुनों का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है।

इनके अतिरिक्त अष्टछाप कवियों, वैष्णव सम्प्रदाय के भक्त–कवियों आदि ने भी संगीत को अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने का मुख्य साधन बनाया। संगीत तन्मयता को बनाए रखने का एक सरल एवं सुलभ साधन है। भक्त एवं भगवान के बीच भक्ति साधन सदैव संगीत ही रहा। चाहे फिर वह भजन के रूप में हो अथवा कीर्तन, मंत्रोच्चार आदि या केवल ओम् का उच्चारण मात्र हो। इसी कारण सूर, तुलसी, मीरा, कबीर आदि सभी श्रेष्ठ भक्तों ने संगीत को अपनाकर अपनी साधना सफल की तथा संगीत के स्तर को पुनः श्रेष्ठ बनाया ओर संगीत में पवित्रता एवं आध्यात्मिकता का संचार किया। संगीत का प्रयोग पुनः आध्यात्मिक रूप से प्रारम्भ हो गया था। भजन, कीर्तन के रूप में संगीत की आत्मा पवित्र होती गई। इस प्रकार भक्तिधारा के अनेक सन्त संगीतज्ञों ने इस धरती को पावन किया तथा अपनी निश्छल सेवा से संगीत को पुनः शिखर पर पहुंचाया।

संगीत के विकास को देखते हुए अकबर के काल को भारतीय संगीत का स्वर्णिम काल माना गया है जो पूर्णतया उचित प्रतीत होता है। अकबर बादशाह स्वयं संगीतप्रिय शासक रहा। उसके दरबार में भारतवर्ष के एक से बढ़कर एक संगीतज्ञ रहे। उसने संगीत के प्रचार–प्रसार के लिए तन–मन–धन से अपना सहयोग दिया। इस समय ग्वालियर, मुगल दरबार एवं ब्रजमंडल संगीत के मुख्य केन्द्र रहे। बैजू, बख्सू जैसे अद्वितीय संगीतज्ञ भी इस काल में हुए जिन्होंने संगीत को उन्नत बनाने में अपना अमूल्य योगदान दिया रामामात्य एवं पुण्डरीक विट्ठल आदि शास्त्रकारों ने संगीत के श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचना की।

दूसरी ओर इसी समय ही सौभाग्य बड़े–बड़े सन्त महात्माओं, का आविर्भाव हुआ। जिन्होंने अपनी अमृतवाणी द्वारा संगीत में पुनः पवित्रता तथा आध्यात्मिकता का संचार किया। इनमें कबीर, सूर, हरिदास,

तुलसी, मीरा आदि प्रमुख थे। तत्कालीन संत संगीत के अन्तर्गत शास्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत दोनों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ।

इस काल में जहां संगीत एक ओर मुसलमानों के मनोरंजन एवं भोग–विलास का साधन रहा वहीं विभिन्न महान् सन्तों द्वारा इसकी पवित्रता एवं उज्ज्वलता भी स्थिर रही। एक ओर तो ध्रुवपदों में राजा की प्रशंसा, वीरता आदि का वर्णन होता था तथा दूसरी ओर ध्रुवपदों में भगवान की आराधना, लीलाओं का वर्णन एवं कीर्तन आदि होता था। अतः इस काल में भारतीय संगीत का लगभग सभी दृष्टिकोणों से समुचित विकास हुआ। भारतीय संगीत की दृष्टि से अकबर के काल को स्वर्ण युग कह सकते हैं, क्योंकि इस काल में भारतीय संगीत की लगभग सभी प्रवृत्तियों का विकास सुचारू ढंग से हुआ। संगीत के शिल्पक एवं आत्मिक तथा कलात्मक ज्ञान की अभिवृद्धि अपनी पराकाष्ठा की प्रशस्त सीमा को स्पर्श कर रही थी।[9]

अकबर के पुत्र जहांगीर भी संगीत प्रिय शासक रहा। जहांगीर के दरबार में मुख्य कलाकार तानसेन के छोटे पुत्र विलास खां, छतर खां, खुर्रमदाद, मक्ख और हमजान आदि थे। यह संगीतकारों को समय–समय पर पुरस्कृत करता रहता था। यह ध्रुवपद, गजल तथा कव्वाली सुनने का अधिक शौकीन था।[10] इसकी बेगम नूरजहाँ भी स्वयं संगीत पारखी थी। जहांगीर अरबी संगीत का ज्ञाता था परन्तु भारतीय संगीत को भी सुनता था तथा उसको समझने का पूर्ण प्रयत्न करता था। इसके समय में संगीत के अनेक उच्चकोटि के ग्रन्थों का निर्माण हुआ, जिनका परिचय प्रस्तुत है।

रागविबोध :

दक्षिण के एक विद्वान पंडित सोमनाथ ने 1610 ई0 में 'रागविबोध' की रचना की। उन्होंने अपने ग्रन्थ में उत्तर तथा दक्षिण पद्धतियों का समन्वय करने का प्रयत्न किया। सोमनाथ ने 7 शुद्ध तथा 10 विकृत स्वरों का उपयोग किया है।[11] इनके ग्रन्थ में 22 श्रुतियों तथा 23 थाटों एवं संगीत सम्बन्धी प्रत्येक विषय पर प्रकाश डाला गया है।

संगीत दर्पण :

1625ई0 में दामोदर पंडित ने 'संगीत–दर्पण' की रचना संस्कृत भाषा में की। इन्होंने अपने ग्रन्थ में स्वराध्याय के अन्तर्गत नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना तथा तानों का वर्णन किया है। विकृति और शुद्ध मिलाकर 19 स्वर माने हैं। ''एतैश्च सप्तभिः शुच्दैर्भक्त्येकोनविंशतिः।[12] रागाध्याय के अन्तर्गत उन्हांने रागांग, भाषांग, क्रियांग, उपांग, राग भेद (शुद्ध छायालग, संकीर्ण) राग–गायन आदि का वर्णन किया है। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसकी महत्ता के कारण 18वीं शती में इसका अनुवाद फारसी में भी किया।

मुगल बादशाह शाहजहां वास्तुकला का प्रेमी होने के साथ संगीत कला को भी महत्व देता था। भारतीय इतिहास में कहा गया है कि शाहजहां संगीत प्रेमी था और स्वयं भी एक अच्छा गायक था। वह अपने अन्तःपुर में प्रतिदिन संगीत का आनन्द लेता था। रंग खां, कलावन्त, खुशहाल खां, बिसराम खां, जगन्नाथ, रामदास, लाल खां, दुरंग खां आदि श्रेष्ठ संगीतज्ञ उसके दरबार में थे। शाहजहां श्रेष्ठ संगीतकारों को विभिन्न उपाधियों से सम्मानित करता था। लाल खां को उसने 'गुनसमन्दर' की उपाधि दी थी।

गायक होने के साथ–साथ शाहजहां सितार–वादन में भी निपुण था। कहा जाता है कि संगीत के वशीभूत होकर शाहजहां ने एक बार बिना पढ़े ही एक आज्ञा–पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये थे। वह उर्दू शायरी एवं हिन्दुस्तानी संगीत सुनना पसंद करता था। शाहजहां के समय में संगीत सम्मेलन एवं संगीत प्रतियोगिताएं भी होती थीं। इस काल में नृत्य–गायन गणिकाओं के सम्पर्क में अधिक होने के कारण पतन की ओर अग्रसर होने लगा था। कलाकारों का चरित्र भी संयमी न होकर विलासपूर्ण हो गया था। परन्तु फिर भी इस समय संगीत का एक सैद्धांतिक ग्रन्थ 'संगीत पारिजात' का प्रकाण्ड पंडित अहोबल द्वारा निर्माण हुआ।

संगीत–पारिजात :

पं0 अहोबल ने (1650) में प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संगीत–पारिजात' की रचना संस्कृत में की। अहोबल ने भी उत्तरी एवं दक्षिण संगीत पद्धतियों को मिलाने का महत्वपूर्ण प्रयास किया। इस महान संगीतज्ञ ने ही सर्वप्रथम वीणा के तार की लम्बाई के आधार पर स्वरों को स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया। जिस कारण सम्पूर्ण संगीत जगत इसका ऋणी है। अहोबल ने संगीत पारिजात में मार्गी तथा देशी संगीत, परम्परागत 22 श्रुतियों, 7 स्वरों के रंग, रस आदि 125 रागों का वर्णन, मूर्च्छना, गमकों, राग गायन–समय आदि का वर्णन किया है। अपने रागों में इन्होंने 12 स्वरों का ही उपयोग किया है। संगीत पारिजात का शुद्ध सप्तक दक्षिण के खरहरप्रिया राग तथा हमारे काफी राग के समान है। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ का 1774ई. में फारसी में अनुवाद किया गया।

शाहजहां का पुत्र औरंगजेब 1658ई. में सिंहासनारूढ़ हुआ। अकबर, जहांगीर तथा शाहजहां की भांति औरंगजेब की प्रशंसा में भी अनेक ध्रुवपद मिलते हैं। अपने प्रारम्भिक काल में औरंगजेब को संगीत से चिढ़ नहीं थी। उसकी वर्षगांठ आदि पर संगीत के कार्यक्रम होते थे। खुशहाल खां, हयात सरस नैन, सुखीसेन आदि कलावन्तों का औरंगजेब सम्मान करता था। उस सुखीसेन रबाब का एक अद्वितीय वादक था। 1665ई0 में फरखरुल्लाह द्वारा 'रागदर्पण' नामक एक ग्रन्थ लिखा गया जिसमें औरंगजेब के संगीत प्रेम का वर्णन मिलता है।

औरंगजेब मुख्यतः दो कारणों से संगीत से घृणा करने लगा। प्रथम राजनीतिक कारणों से क्योंकि उसके पिता शाहजहां ने संगीत के वशीभूत होकर एक आज्ञापत्र पर बिना पढ़े हस्ताक्षर कर दिये थे। दूसरा कारण था कि के समय संगीत अपनी प्राचीन पवित्रता पूर्णतया खो चुका था। तत्कालीन संगीत मानव को पतन की ओर ले जाने वाला हो गया था। इसी कारण ओरंगजेब संगीत को चरित्र पतन का सबसे बड़ा साधन मानता था। भारतीय संगीत के यथार्थ यथार्थ ज्ञान से वंचित होने के कारण ही सम्भवतः उसकी यह धारणा बनी। उसे संगी से इतनी घृणा हो गई कि संगीतज्ञों द्वारा संगीत का जनाजा निकालने पर उसे गहरा दबाने की सलाह दी। परन्तु तब भी सरदारों, सूबेदारों और बादशाह के हरम तक से संगीत प्रेम समाप्त नहीं हुआ। संगीत पर प्रतिबन्ध लगाने के उपरान्त भी अन्तःपुर में गायिकायें एवं नर्तकियां नियुक्त रहती थीं।

संगीत साहित्य की दृष्टि से यह काल महत्वपूर्ण रहा उस समय अनेक संगीत सम्बन्धी गन्थ लिखे गये। इसके काल में 'संगीत–पारिजात' तथा 'मानकुतूहल' जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थों का अनुवाद हुआ।

चतुर्दण्डिप्रकाशिका :

चतुर्दण्डिप्रकाशिका पण्डित व्यंकटमुखी द्वारा सन् 1660 में लिखा गया। ये दक्षिण के लेखक थे। इन्होंने गणितानुसार 12 स्वरों से 72 थाट तथा एक थाट से 784 रागों की उत्पत्ति मानी है। 72 थाटों में से इन्होंने 19 मेलों को स्वीकार किया।

हृदय कौतुक एवं हृदय प्रकाश :

हृदय नारायण देव ने 1660 में हृदय कौतुक एवं हृदय–प्रकाश ग्रन्थों की रचना की। इन्होनें 12 थाटों राग तरंगिणी के लिए है। इन्होंने पं. अहोबल के समान ही शुद्ध तथा विकृति स्वरों को वीणा के तार पर स्थापित किया और हृदय रामा नाम एक नवीन राग की रचना की।

अनूप संगीत रत्नाकर, अनूप विलास, अनूपांकुश :

पं. भावभट्ट द्वारा 1674–1709ई. में अनूप संगीत रत्नाकर, अनूप विलास, अनूपांकुश नामक तीन संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की। पं. भावभट्ट बीकानेर के नरेश कर्णसिंह के पुत्र अनूपसिंह के दरबार में थे। इनके आश्रयदाता राजा अनूपसिंह ने 'संगीत–राज', अनुष्टुप चक्रवर्ती, आदि उपाधियों से सम्मानित किया था। भावभट्ट ने अनूपविलास में सप्तक के स्वरों के चित्र एवं उनके देवता का वर्णन किया है। इनका शुद्ध सप्तक मुखारी था। अपनी रचनाओं में नाद, श्रुति, स्वर आदि का संगीत रत्नाकर के समान

वर्णन किया है। इन्होंने 20 थाटों के अन्तर्गत रागों का वर्गीकरण किया तथा अनेक रागों के प्राचीन ध्रुपदों का स्वरलिपि रहित वर्णन किया।

श्रीकंठ द्वारा 'रस–कौमुदी' की रचना हुई। इसके रचनाकाल के विषय में स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

इस प्रकार अन्धकार युग के अन्तर्गत पूर्ण पाषाण युग में संगीत पूर्णतया अविकसित रूप में था। उत्तर पाषाण युग में संगीत का विकास होना प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् सिन्धु घाटी की सभ्यता में संगीत का बहुत कुछ विकास हो चुका था। वैदिक काल में संगत अपने चरमोत्कर्ष पर था। संगीत एक पवित्र कला मानी जाती थी। महाकाव्यकालीन समाज में संगीत की पवित्र धारा प्रवाहित थी। मौर्य काल की अपेक्षा गुप्तकाल में संगीत की अधिक उन्नति हुई। मुगल काल से पूर्व तुगलक, लोदी आदि वंश के शासकों की संकीर्ण मानसिकता के फलस्वरूप तत्कालीन संगीत कला का विकास क्षीण हो गया था। मुगलों के आगमन के कारण भारतीय संगीत की प्राचीन परम्परा कुछ नवीनता एवं परिवर्तन होने लगे थे। भारतीय संगीत पर ईरानी संगीत का प्रभाव पड़ने लगा। अपवाद स्वरूप एक दो–मुगल शासकों को छोड़कर अधिकांश शासक संगीत में रुचि रखते थे। इनके अतिरिक्त अनेक सन्त, महात्मा, सूफी, फकीर एवं अन्य उच्चकोटि के संगीतज्ञों ने भारतीय संगीत की उन्नति में अपना सहयोग दिया। मध्यकाल में संगीत जैसी अदृश्य कला को चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया। राग–रागिनी चित्रों का प्रचलन शुरू हुआ। अनेक संगीत विद्वानों ने अपने ग्रन्थों के माध्यम से संगीत के स्वरूप को स्पष्ट किया परन्तु इतनी विशेषताओं के बावजूद भारतीय संगीत अपनी आध्यात्मिकता एवं पवित्रता को संजोकर नहीं रख पाया जो वैदिक काल के प्रारम्भिक दौर में थी। संगीत का प्रयोग राजा–महाराजों, नवाबों के मनोंजन के लिए होने लगा। श्रृंगारिक रचनाओं को अधिक लोकप्रियता मिलने लगी। इस काल तक संगीत विलासिता के साधन का रूप ले चुका था।

संदर्भ :

1. संगीत –1952 फरवरी
2. शर्मा, एल.पी. –मुगलकालीन भारत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा
3. जोशी, उमेश –भारतीय संगीत का इतिहास, भारतीय संगीत का इतिहास, मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, आगरा, द्वितीय संस्करण।
4. रामामात्य– स्वर–मेल–कलानिधि, स्वर प्रकरण श्लोक 21–22, अनुवादक पं0 विश्वम्भर नाथ भट्ट संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0प्र0), मई, 1963
5. भातखण्डे– संगीत पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन, अनु0 भगवतशरण शर्मा, संगीत कार्यालय, हाथरस, 1972
6. जोशी, उमेश– भारतीय संगीत का इतिहास, मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, आगरा, द्वितीय संस्करण।
7. वालिया डेजी – सूर काव्य में संगीत लालित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1974

8. शर्मा, स्वतंत्र– पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
9. जोशी, उमेश– भारतीय संगीत का इतिहास, भारतीय संगीत का इतिहास, मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, आगरा, द्वितीय संस्करण।
10. आचार्य वृहस्पति– मुसलमान और भारतीय संगीत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1974
11. भातखण्डे, संगीत–पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन, अनु0 भगवतशरण शर्मा, संगीत कार्यालय, हाथरस, 1972
12. पं. दामोदर–संगीत दर्पण, अनुवाद–विश्वम्भर नाथ भट्ट, श्लोक 67, प्रथम अध्याय
13. डॉ0 सिंह एषा –संगीत सम्राट तानसेन, कैपिटल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1987
14. Luniya, B.N.-Life and Culture in Medieval India, Kamal Prakashan, Indore, 1978
15. Mishra Sushila - Greater Masters of Hindustani Music, Hem publishers, New Delhi.

****